पाँचवाँ अध्याय

'रामचरितमास' की प्रासंगिकता

5.1 प्रस्तावना

आज के वर्तमान युग की तत्कालीन परिस्थितियों पर अगर हम प्रकाश डालें तो आज हमें वह मूल्य, वह आदर्श कहीं भी नजर नहीं आते हैं जो परम्पराएँ हमारी भारतीय संस्कृति को विश्व भर में एक अलग ही सुसंस्कृत संस्कृति की महान धरोहर के रूप में पहचान दिलाती थीं। आज प्रायः वे सारे मूल्य नगण्य रूप में ही कहीं किसी-किसी हृदय में ही जीवित हैं। वैसे तो आज प्रायः उन सभी स्थानों में ही उन उन्नत मूल्यों के विघटन का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। परंतु मैं अभी हाल ही में घटित एक घटना से परिचय करता हूँ जो गुजरात में घटित हुई थी। वहाँ पर तत्कालीन एक समाज के उद्धार का दायित्व वहन करने वाले एक संगठन की कुछ महिलाओं ने समूह सभा में उपस्थित सभी महिलाओं के गले के मंगलसूत्र को तोड़कर तथा सभी को इसी प्रकार से तोड़ने का आवाहन देकर वे केवल यह बतलाना चाह रही थीं कि स्त्रियों को आज के आधुनिक समाज में कोई बेड़ियों में नहीं जकड़ कर रख सकता। ये परम्पराएँ, ये मंगलसूत्र उनके गले का फंदा है, हाथों की चुड़ियाँ हथकड़ियाँ हैं तथा माथे का सिंदूर उनके सुहाग की निशानी नहीं है, बल्कि यह एक दिखावा है, एक बंधन है, एक रुकावट है। इतना ही नहीं, उस संगठन की कुछ महिला कार्यकर्ता भीड़ में आयी स्त्रियों के गले से स्वयं उनका मंगलसूत्र अपने हाथों से तोड़ने भी लगी थीं। इस प्रकार का संगठन अपनी निजी विचारधाराओं या मतवादों का किसी प्राचीनकालीन महान सभ्यता पर, उनकी परम्पराओं तथा उनकी संस्कृति पर एक ऐसा प्रहार है जो धीरे-धीरे मानव मूल्यों की आधारशिला को ही नहीं, उन रिश्तों की संवेदनशीलता को भी खोखला कर दे रहा है, जो रिश्तों में करुणा, ममता, धर्म, दया, प्रेम तथा समर्पण आदि की मजबूत गाँठ हुआ करती हैं। जिसका टूटना इन सभी आंतरिक भावनाओं के टूटने के समान अहितकारी ही सिद्ध होगा। ये परम्पराएँ या

रीतियाँ ही समाज रूपी इस वसुधा पर वह बरगद का पेड़ है, जो हमें शुद्ध आक्सीजन ही नहीं देता बल्कि जीवन के विपत्ति रूपी धूप में छाँव भी देता है। ये बरगद रूपी संस्कृति की छाँव ही हम भारतियों की असली पहचान है।

ध्यान देने योग्य बात है कि क्या ये परम्पराएँ वास्तविक बेड़िया हैं,या वह मासिकता जो इस प्रकार की परिस्थिति को उत्पन्न करने का कारण हैं। क्या इन परम्पराओं के तोड़ने से अच्छा यह न होता कि उन विचारधाओं पर प्रहार किया जाए जोमनुष्य के अंदर व्याप्त अपनी नीच मानसिकता से समाज को खोखला कर देना चाहती हैं? अतः इन परम्पराओं को विनष्ट न कर के विचारधाराओं में परिवर्तन लाकर एक सभ्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता पर विचार करना जरूरी है। ऐसे सैकड़ों-हज़ारों ही उदाहरण इस समाज में वर्तमान हैं या हो रहे हैं जो धीरे-धीरे उन महान संस्कृतिक परम्पराओं का शोषण कर समाज को खोखला बनाने पर तुले हुए हैं। अतः इस प्रकार का साहित्य जो पौराणिक होते हुए भी वर्तमान समाज को नैतिक मूल्यों का बोध करा सके, उन आदर्शों से परिचित करने की क्षमता रखे जो समाज को आदर्श समाज तथा मनुष्य को आदर्शवान सामाजिक नागरिक बनाने में सक्षम हों। जो उन परम्पराओं तथा उन पद्धतियों का भी दिग्दर्शन कराये जो मानव को मोक्ष के उस राह पर भी चलने का साहस दे सके जिन परम्पराओं में उसके इह जीवन का ही नहीं बल्कि उस अलौकिक जीवन का भी उद्धार करने की क्षमता हो तथा जिसकी राह शुद्धता, स्वच्छता,सेवा, परोपकार, सत्य, तप, ज्ञान और भक्ति की शक्ति से ओत-प्रोत है। निश्चय ही यह विषय प्रासंगिक है तथा आवश्यक भी है।

5.2 'प्रासंगिकता' शब्द की व्याख्या

'प्रासंगिकता' शब्द से आशय आज के संदर्भ में उस विषय-वस्तु, सिद्धांत ,घटनाओं आदि में निहित नियमों अथवा मान्यताओं की आवश्यकता से है। यह आवश्यकता वर्तमान युग के उन मूल्यों की क्षतिपूर्ति करने का साहस है जो पूर्व में थीं परंतु आज उनका लोप हो चुका है । अतः इन मूल्यों की अब समाज के कल्याण में,उस नीति नियम या उन आदर्शो के निर्माण में आवश्यकता है । यही आदर्श एक सभ्य समाज की नींव भी कही जा सकती है। 'प्रसंग' शब्द में ही 'इक' प्रत्यय लगाकर प्रासंगिक और इसी से पुनः प्रासंगिकता शब्द की व्युत्पति हुई है । जिसका सामान्य अर्थ है आज के संदर्भ में आवश्यक । डॉ. संजय कुमार शर्मा ने 'प्रासंगिकता' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है-

> जो पुराना साहित्य है उसकी आज क्या आवश्यकता है अथवा उसकी आज क्या सार्थकता है?(शर्मा 2008:08)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन काव्य परम्परा की ओर दृष्टि डालें तो हमें लगभग सम्पूर्ण साहित्य ही प्रासंगिक लगता है । विशेषकर भक्तिकालीन रचनाओं में वे मूल्य,आदर्श और भक्ति का सुंदर रूप हमें देखने को मिल जाता है जो एक सभ्य समाज की आधारशीला है । भक्तिकालीन साहित्य की प्रासंगिकता पर विचार व्यक्त करते हुए डॉ॰ संजय कुमार शर्मा ने कहा है-

> सहस्त्राधिक वर्षों के हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व-मध्यकाल अथवा भक्तिकाल हमारी प्राचीन,समृद्ध और शक्तिशाली भारतीय संस्कृत का ही सार अथवा निचोड़ है । अपने मूल्यबोध,भावबोध और सौंदर्य बोध के कारण ही इसे 'स्वर्णिम-साहित्य' कहा जाता है । इस साहित्य की मूल्यवता एककालीक न होकर सर्वकालिकहै । अंधकार में भटकते मध्यकालीन

> मनुष्य को इसने ऊर्जा प्रदान की थी और भौतिक,वैचारिक उलझन,हिंसा तथा अविश्वास से ग्रस्त वर्तमान भारतीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में भी इस महान साहित्य की प्रासंगिकता है।(शर्मा 2008:07)

भक्तिकालीन रामभक्ति काव्य की व्याख्या करतेहुए डॉ॰ स्टेल्लाम्मा सेब्यर ने कहा है-

> भारत के पश्चात कालीन राजनैतिक,धार्मिक, साहित्यिक एंव सामाजिक जीवन का अध्ययन करने पर हम यह समझ सकते हैं कि रामभक्त कवियों की प्रासंगिकता बनी रहती हैं। उन्होंने जीवन के जिन आधार पूर्ण तत्वों को छुआ है वे ही आज भी हमारे सांस्कृतिक जीवन में निर्णायक हैं।(सेब्यर 2014:175)

5.3 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता की विषद विवेचना

'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता पर विचार करें तो इस महान ग्रंथ में वे तमाम नैतिक मूल्य और आदर्श हैं जो एक सभ्य समाज कीजरूरत है तथावही भक्ति-भावना और सेवा आदि गुण हैं जो किसी भी मनुष्य के शरीर में प्राण सदृश हैं । आधुनिक संदर्भ में तुलसी के सामाजिक दर्शन की व्याख्या करते हुए डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय कहते हैं-

> गोस्वामी तुलसीदास के युग का समाज अनेक कुरीतियों तथा तत्कालीन राजतंत्र की हृदयहीनता से व्यथित था । महाकवि ने समकालीन समस्याओं को 'मानस' का विषय बनाया । साथ ही ऐसे नैतिक मानदंडों की पुनर्स्थापना की, जिन पर समय की धूल जम चुकी थी । ये

> स्वच्छ और निर्मल स्थापनाएँ आधुनिक समाज के लिए उपादेय एवं वरेण्य हैं ।(पांडेय 2020:127)

इसी कारण 'रामचरितमानस' में सामाजिक जीवन की व्याख्या करते हुए डॉ. स्टेल्लाम्मा कहती हैं-

> रामचरितमानस में मानव जीवन के सभी सामाजिक पक्षों का निरूपण किया गया है । सामाजिक जीवन के जिन-जिन पक्षों का वर्णन इसमें हुआ है। वे तत्कालीन समाज के थे किन्तु आज के भी हैं । इसलिए मानस में चित्रित सामाजिक जीवन की प्रासंगिकता कालातीत है।(सेव्यर 2014:58)

अतः आगे मैं सम्पूर्ण 'रामचरितमानस' में निहित उन नैतिक मूल्यों एवं भक्ति की प्रासंगिकता पर विचार प्रस्तुत करूंगा। इन विचारों के वैसे तो अनेकों प्रकार हैं। इन नामों का आगे क्रमानुसार वर्णन इस प्रकार है-

5.3.1 नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों की प्रासंगिकता

'रामचारितमानस' का प्रत्येक पात्र ही महान आदर्शों की थाती लिए हुए अपने आप में उत्तम नज़र आता है । इन पात्रों में उन सभी नैतिक मूल्यों की भी भरमार है जिन नैतिक मूल्यों के आधार पर किसी भी भव्य समाज की स्थापना संभव हो पाती है । 'रामचरितमानरस' में गोस्वामी तुलसीदास ने इन सभी नैतिक मूल्यों और आदर्शों को आने वाले युगों के पथ प्रदर्शन हेतू थाल में मोती स्वरूप सजाकर रखा है । ये मोती निश्चय ही समाज को सुसजीज्त कर उसकी शोभा को चौगुना बढ़ती हैं। इन नैतिक मूल्यों,आदर्शों के भी अनेकों भेद-उपभेद

हैं जिनका उदाहरणसंगत वर्णन नीचे मैं करने जा रहा हूँ। ये मूल्य स्वतः ही प्रामाणिक हैं तथा इन मूल्यों की प्रासंगिकता आज के वर्तमान युग के संदर्भ में बनी हुई हैं।

5.3.2 गुरु के प्रति समपर्ण तथा सेवा भाव

शिक्षा जबसे गुरुकुलों से स्कूलों-कॉलेजों मैं आयी है,व्यापक तो हो ही गयी है परंतु मूल्यों तथा आदर्शो का विघटन होना भी यहाँ सत्य ही है। यह भी परम सत्य है कि पहले जिस प्रकार से गुरु का आदर तथा उनकी शिक्षा और आज्ञा को शिरोधार्य करने की दृढ़ भावना थी, जो करुणा तथा सेवा की प्रबल इच्छा तथा महान कार्य करने का हृदय में साहस और विश्वाश था वह अब नहीं रहा। आज शिक्षा-व्यवस्था अथवा गुरु-शिष्य संबंध में वह नैतिक मूल्य तथा वह भावना नहीं है जो एक दूसरे के लिए समपीर्त हो सकें। 'रामचरितमानस' हमें उन्हीं बातों का स्मरण कराती हैं। इस में निहित गुरु भक्ति तथा गुरु की आज्ञा पालन के प्रति अपने कर्तव्य का आभास करने की जो क्षमता है वह निश्चय ही प्रासंगिक है। 'रामचरितमानस' के अनेकों प्रसंग में इस बात का प्रमाण मिल जाता है। तुलसीदास सर्वप्रथम गुरु की स्तुति करके ही लिखना प्रारम्भ करते हैं। तुलसीदास गुरु को प्रमाण करके यहाँ कहते हैं कि गुरु की कृपा ऐसी है जो नरहरि रूप में सूर्य की भांति मोहान्धकार का नाश कर देती है-

बंदऊँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।(तुलसीदास 2015:19)

इसी प्रकार आगे एक स्थान पर गुरु को परम पूज्य मानकर ऋषि भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य मुनि को यह बात कही थी कि संतो की वाणी प्रसिद्ध है कि गुरू के साथ छिपाव नहीं करना चाहिए। गुरु से कोई छिपाव करने पर हृदय ज्ञान को ग्रहण नहीं कर पाता-

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।

होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ।।(तुलसीदास 2015:68)

आगे एक स्थान पर पार्वती गुरू के प्रति श्रद्धा व्यक्त करत्ते हुए समाज को यह सीख देती हैं कि जिन लोगों के मन में गुरू के वचनों पर विश्वास नहींउन्हें कभी सिद्धि या ज्ञान लाभ नहीं हो पाता-

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजोरउ नहिं डरऊँ ।।

गुर के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहूँ सुगम न सुखी सिधि तेही ।।(तुलसीदास 2015:95)

सीता स्वयंवर में गुरू के आग्रह करने पर राम-लक्ष्मण वहाँ जाते हैं। सामथ्यर्वाण होते हुए भी राम बिना गुरू की आज्ञा के धनुष नहीं उठाते। गुरू की आज्ञा पाकर तथा उनके चरणों में प्रणाम करके ही राम धनुष तोड़ कर सीता जी से विवाह करते हैं। गुरू की वंदना कर, आज्ञा माँग कर धनुष तोड़ने उठे श्री राम की नैतिकता तथा शिष्टाचार का यही नहीं, बल्कि हर जगह परिचय मिलता है। यही है गुरू भक्ति जो सदा ही प्रासंगिक है तथा युगों-युगों तक ये शिष्टाचार ही मानव समाज की प्रेरणा बन उसके हृदय में गुरु के प्रति श्रद्धा का बीज बोती रेहेंगी। आगे एक स्थान पर राम स्वंय भरत को गुरू और माता-पिता की आज्ञा का महत्व बताते हुए कहते हैं कि अगर गुरू,पिता-माता तथा स्वामी की आज्ञा का पालन करने से कुमार्ग पर भी पैर रखना पड़े तब भी अनिष्ट टीबी भी अनिष्ट नहीं होगा-

गुर पितु मातु स्वामिसिख पालें। चलेहूँ कुमग पग परहिं न खालें।।(तुलसीदास 2015:607)

उत्तरकाण्ड में एक प्रसंग में गुरू के प्रति हृदय में ईष्या रखने वालों के लिए तुलसीदास ने कहा है कि गुरू से ईष्या करने वालो को रौरव नामक नर्क में कष्ट सहना पड़ता है-

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।(तुलसीदास 2015:1010)

अतः गुरू के प्रति श्रद्धा, विनम्रता तथा गुरू सेवा का जो रूप हमें यहाँ देखने को मिलता है वह निश्चय ही प्रासंगिक है,ग्राह्य है तथा कल्याणपरक भी है ।

5.3.3 संतों के गुण तथा सत्संग की माहिमा

संत अथार्त महात्मा, ईश्वर-भक्त, साधू या सन्यासी, जिसने अपना मन प्रभु के श्री चरणों में लगा दिया है तथा ज्ञान ही जिसकी पहचान हो । विविध शास्त्रों अथवा महान पुरुषों की माने तो हम देखते हैं कि संतो की महिमा सबने गायी है तथा सत्संग में विचार तथा व्यक्तित्व का विकास ही होता आया है । 'रामचरितमानस' में भी हमेशा संतो के गुणों की व्याख्या तथा सत्संग की महिमा का बखान हुआ है। भक्ति काव्य की प्रासंगिकता की व्याख्या करते हुए डॉ. संजय कुमार शर्मा कहते हैं-

> तुलसीदास ने समाज में संतों के स्थान को महत्वपूर्ण माना है । संत,'समाजकल्याण' के हेतु जीवित रहता है । संत कभी अपने 'स्वहिताय' काम नहीं करते । संत सामाजिक विषमताओं के विरोधी होते हैं ।(शर्मा 2008:94)

तुलसीदास ने कथा के प्रारम्भ में ही इन गुणों की व्याख्या करते हुए कहा है कि जिसने भी संसार में बुद्धि, सद्गति तथा जो कुछ भी प्राप्त किया है वह सभी सत्संग का ही प्रभाव है-

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहूँ बेद न आन उपाऊ।।(तुलसीदास 2015:22)

एक स्थान पर तुलसीदास आगे कहते हैं कि अगर संतो की संगति प्राप्त हो जाए तो मूर्ख भी सुधर जाते हैं । जैसे पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है तथा सर्प के मुख में विष पान कर के भी मणि प्रकाश को ही फैलाती है-

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ।।

बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ।।(तुलसीदास 2015:22)

नारद मुनि द्वारा पुछे जाने पर राम स्वंय संतो के गुणों का वर्णन हुए कहते हैं कि संत छः विकारों– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर को जीत लेते हैं । वे पाप रहित, कामना रहित, निश्चल,अकिञ्चन, पवित्र, सुख के धाम, ज्ञानी, इच्छा रहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ,कवि, विद्वान तथा योगी होते हैं । अतः इस प्रकार के गुणों से युक्त संतों का ही सत्संग करना चाहिए-

षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।

अमित बोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।।(तुलसीदास 2015:678)

आगे संतों के गुणों की व्याख्या करते हुए राम कहते हैं कि संत गुणों के धाम होते हैं । सच्चे संत अपने मुख से अपनी बड़ाई नहीं करते । बल्कि दूसरे का गुण सुन प्रसन्न होते हैं । वे न्याय का कभी भी त्याग नहीं करते तथा

सभी से प्रेम करते हैं। वे सदा जप,तप, व्रत,संयम और नियम में रहकर गुरु, गोबिन्द तथा ब्राह्मणों में सदा ही प्रेम रखते हैं। उनमें वैराग्य, विवेक तथा विनय होता है और वेद-पुराण का ज्ञान होते हुए भी अहंकार से रहित होते हैं तथा कुमार्ग पर कभी पैर नहीं रखते-

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति।।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा॥

श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥

दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।(तुलसीदास 2015:678)

एक स्थान पर शिव स्वयं पार्वती से कहते हैं कि संत सदा ही बुराई करने वाले की भी भलाई ही कर जाते हैं,-

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।।(तुलसीदास 2015:752)

एक स्थान पर तुलसीदास लिखते हैं कि संत लोग करोड़ों विघ्न आने पर भी नीतिका त्याग नहीं करते-

कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग।।(तुलसीदास 2015:805)

उत्तरकाण्ड में भीसंतों के गुण तथा सत्संग के प्रभाव का वर्णन करते हुए तुलसीदासआगे कहते हैं कि सेंतो का संग मोक्ष और ज्ञान प्राप्ति का साधन बन जाता है तथा कामी पुरुषों का संग जन्म-मृत्यु के बंधन में बाँधने वाला होता है-

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ ।(तुलसीदास 2015:942)

अतः हम यहाँ सभी उदाहरणों के मूल मे छिपे उस विचारधारा को देख सकते हैं कि यह किस प्रकार अपने समाज का हीनहीं अपितु आने वाले युगों का भी पथ प्रदर्शन करते रहेंगे । यह प्रसंग निश्चय ही प्रासंगिक है। इन सभी व्याख्याओं में वह ज्ञान छुपा मिलता है जिस के बल पर हम आज के ढोंगी बाबाओं तथा मिथ्या वचनों से बचकर यह पहचान पाये कि क्या और कौन सही है तथा क्या और कौन गलत है । अतः निश्चित तौर पर ये सभी गुण प्रासंगिक हैं,ग्रहण योग्य हैं ।

5.3.4 स्त्री धर्म की शिक्षा

प्रायः बहुतायत में विद्वानों ने तुलसीदस की स्त्री संबंधी दृष्टिकोण की आलोचना ही की है । परंतु गंभीरता पूर्वक विचार करने पर तुलसीदास की स्त्री संबंधी दृष्टिकोण में कोई विभेद नज़र नहीं आता। तुलसीदास अगर स्त्री विरोधी होते तो वे सीता को माता और भारत की आदर्श पतिव्रता नारी के रूप में न चित्रित करते। माता कौशल्या तथा सुमित्रा के सरल सावभाव की सुंदर वर्णन न करते तथा सतीपार्वती की पति परयणता की महिमा का बखान नहीं करते और शबरी को भी राम की अनन्य सेविका नहीं बनाते । अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं की तुलसीदास की स्त्री संबधि दृष्टिकोण अत्यंत ही पवित्र और आदर्शवादी है । तुलसीदास बसकामी तथा लालची स्त्रियों की ही निंदा करते हैंजिन्हें अपने स्वामी, अपने परिवार तथा समाज के प्रति कोई चिंता नहीं होती, जो केवल अपने सुख साधन के लिए जीती रहती है । अतः ऐसी कामी स्त्रियों की

निंदा करते हुए तुलसीदास ने सीता, सती, पार्वती, सुनयना, कौशल्या, सुमित्रा, तथा रावण की पत्नी मंदोदरी की भी पतिपरायणता को भारतीय नारी का आदर्श रूप बना कर समाज को एक सुंदर उदाहरण दिया है । ये सभी स्त्रियाँ निश्चय ही अतुलनीय तथा आदर्शवादी हैं । इनका जीवन तथा चरित्र त्याग का यथार्थ रूप है । ये स्त्रियाँ अपने कर्तव्य के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग तथा तपस्या करने मे भी पीछे नहीं हटती । इनकी स्वामी भक्ति निश्चय ही वंदनीय तथा अनुसरनीय है । इन महान स्त्रियों का चरित्र निश्चय ही प्रासंगिक है ।डॉ. नंदकिशोर नवल के शब्दों में-

> तुलसीदास के विरोधी सिर्फ उनके नारी-विरोध को देखते हैं, उनके द्वारा किए गए नारी चित्रण को नहीं ।(नवल 2014:75)

शिव विवाह के प्रसंग में जब शिवजी का परछन करने पार्वती की माता मैना शिवजी का भयानक वेष देखकर डर जाती हैं तथा अपनी पुत्री पार्वती के हित की चाह में उसे यह विवाह करने से रोकती हैं । तब तपस्यामयी नारी पार्वती अपनी माता को कहती हैं कि यदि उनके भाग्य में दुख भी लिखा है तो उन्हें मिलेगा ही। वे कलंक का भागी ना बनें और विषाद को त्यागकर कर्तव्य का पालन करें-

> करम लिखा जौं बाउर नाहू । तौ कत दोसु लगाइअ काहू ।।
>
> तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका । मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ।।
>
> छं॰- जनि लेहु मातु कलंकू करुना परिहरहु अवसर नहीं ।
>
> दुख सुख जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ।।(तुलसीदास 2015:111)

अतः यही भारतीय स्त्री का आदर्श रूप है कि दुख-सुख में सदा स्थिर रहकर परिवार तथा स्वामी का साथ निभाना है। यह आदर्श निश्चयही प्रासंगिक है।

इसी कारण सीता आदि शक्ति देवी पार्वती की पूजा करते हुए उनकी स्तुति करती हैं तथा उनके गुणों की व्याख्या कर कहती हैं कि पति को ईस्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियों में पार्वती की गणना होती है-

पतिदेवता सुतीय महूँ मातु प्रथम तव रेख।(तुलसीदास 2015:230)

अतः यह सब प्रसंग निश्चय ही प्रासंगिक है।

सीता स्वयंवर प्रसंग में भी तुलसीदास स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि कामी पुरुषों की बातें सुनकर कभी भी सति स्त्रियों का मन विचलित नहीं होता। अतः यहाँ पर स्त्री के सतीत्व की ही बात कवि कहते हुए उनकी महान धर्मपरायणता का सुंदर दृष्टांत देते हैं-

डगई न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें।।(तुलसीदास 2015:244)

अतः निश्चय ही यह सीख सराहनीय तथा प्रासंगिक है।

जब राम को वनवास मिला तथा अकेले वनवास को जाने लगे और पत्नी सीता को स्त्री धर्म की शिक्षा में बाँधकर घर में रहने को कहने लगे तब समस्त भोग ऐश्वर्यों तथा महलों और आभूषणों का पल में त्याग करने वाली महान नारी सीता अपने पति श्रीराम से कहती हैं कि पति के बिना उनके लिए स्वर्ग भी नरक के समान प्रतीत होता है-

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।(तुलसीदास 2015:397)

अतः ऐसा महानतम त्याग आज स्वतः ही प्रशंसनीय तथा प्रासंगिक है। आज समाज में ऐसी आदर्शमयी नारी के महान व्यक्तित्व की शिक्षा की निश्चय ही आवश्यकता है।

जब सीता को वन की भयानकता और कष्टों का वर्णन कर राम उनसे रुक जाने का आग्रह करते हैं तभी सीता सुंदर शब्द कहती हैं कि वे कंद-मूल, फल खा कर भी सुख पूर्वक रह लेंगी। वन में ही महलों का आनंद उन्हें महसूस होगा। अतः सीता पति के वियोग से भोग का वियोग श्रेयकर समझती हैं। यह प्रसंग भी सरहनीय तथा प्रासंगिक है,-

कन्द मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।।

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकि।।(तुलसीदास 2015:398)

आज अगर हम विचारपूर्वक देखें तो हमारे आस-पास ही हजारों ऐसे उदाहरण हैं जिन घरों में पति-पत्नी का संघर्ष एक आम बात है और गौरतलब है कि ज़्यादातर परेशानियाँ भोगेश्वर्यों के अभाव के कारण ही हैं। अगर इस प्रकार का आदर्श हमारे गृहस्थ समाज के हृदय में बस जाए तो आधी परेशानी यूं ही समाप्त हो जाएगी। अतः यह आदर्श निश्चय ही प्रासंगिक है।

'रामचरितमानस' में पतिव्रताओं के भी चार प्रकार बताए गए हैं। आधुनिक संदर्भ में 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए डॉ. लक्ष्मी सिंह कहती हैं- "नारी को चार वर्गों में विभाजित करके तुलसीदास ने एक शाश्वत और प्रेरणादायक मानदंड स्थापित किया है।"(सिंह 2002:104)

'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं । बेद पुरान संत सब कहहीं।।(तुलसीदास 2015:626)

तुलसीदास कहते हैंकि पतिव्रताएँ- उत्तम श्रेणी, मध्यम श्रेणी, निम्न श्रेणी तथा दुष्टा अथवा अधम श्रेणी में आती हैं । कवि ने यह उदाहरण इसलिए दीया है क्योंकि इसके मध्यम से उत्तम श्रेणी में सब स्त्रीयों को रहने के सीख मिलती रहे । कवि के अनुसार उत्तम श्रेणी की स्त्री पति के अलावा दूसरे पुरुष को स्वप्न में भी नहीं आने देती । मध्यम श्रेणी की स्त्री पाराये पति को अपने सगे भाई, पुत्र या पिता की दृष्टि से देखती हैं । निम्न श्रेणी की स्त्री अपने धर्म तथा कुल की मर्यादा समझ कर बची रहती हैं तथा अधम स्त्री पति को धोखा देकर पराये पति से रति करती हैं । इस प्रकार चारों की व्याख्या कर उत्तम की सराहना करते हुए कवि कहते हैं कि जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत-धर्म का पालन करती हैं, वह परिश्रम किए बिना ही परम गति प्राप्त करती हैं-

बिनु श्रम नारी परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।(तुलसीदास 2015:626)

अतः इस प्रकार से अरण्यकाण्ड में अत्रि मुनि की पत्नी अनुसुया ने सीता को पति धर्म का भेद बताया ।

इतना ही नहीं रावण की पत्नी मंदोदरी द्वारा रावण का विनाश होता देख पूर्व में ही समझाया जाना किउनका पति अधर्म छोडकर धर्म के मार्ग पर चलें, यही स्पष्ट करता हैकि स्त्री का एक और धर्म यह भी है कि पति अगर मार्ग भटक जाए तो उसे सही राह भी दिखना पत्नी का ही धर्म है । रावण ने जब नहीं माना तो उसकी वीरगति को देख मंदोदरी ये वचन कहती हैं कि जब काल किसी पर कुपित होता है तब मनुष्य का धर्म, बल, बुद्धि सबकुछ का हरण कर लेता है-

काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।।

निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ।।

दो॰- दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहूँ पूर पिय देहु ।

कृपासिन्धु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु ।।(तुलसीदास 2015:808)

अतः अपने स्वामी का राम के शरण मे जाना ही उचित समझकर वे समझाती हैं । इस प्रकार से ये सारी शिक्षाएँ निश्चय ही सराहनीय, अनुसरणीय तथा प्रासंगिक है ।

5.3.5 आदर्श गृहस्थ धर्म

जब राजा दशरथ के सभी पुत्र अपनी वधुओं के साथ नगर में पधारें, तब एक आदर्श ससुर की तरह सभी बहुओं का ख्याल रखते हुए दशरथ रानियोंसे कहते हैं किवे सभी सासुएं पुत्रवधुओं का ख्याल नेत्रों के पलक के समान रखेँ-

नृप सब भाँति सबहि सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाईं रानी ।।

बधू लरिकनीं पर घर आईं । रखेहु नयन पलक की नाईं ।।(तुलसीदास 2015:336)

जब राम वन को चले गए तब अपना कर्तव्य जान राजादशरथ सीता को वन से लौटा लाने के लिए सुमन्त्र को भेज देते हैं। परंतु सुमन्त्र भी सीता को नहीं लौटा पाये । दशरथ सुमंत्र से कहते हैं कि सीता को इस प्रकार से कहकर लौटा लाएँकिवो जनकपुरी या अयोध्या जहाँ चाहें वहाँ रह सकती हैं-

पितुगृह कबहूँ कबहूँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ।।(तुलसीदास 2015:411)

इधर राम को भी महल त्यागने का कोई कष्ट नहीं है । वे उसी प्रकार प्रसन्न हैं जैसे उन्हें सारे संसार का सुख मिल गया हो । उनकी इच्छा केवल धर्म की रक्षा करना तथा कर्तव्य का पालन करना है। वे वाल्मीकि को

मृदु वचन कहकर संतुष्ट करते हैं । अथार्त राम कहते हैंकि पिता की आज्ञा,माता का हित और भरत जैसे आदर्श भाई का राजा हो जाना तथा वन में इतने महात्माओं तथा मुनियों के दर्शन होना यह राम के पुण्यों का ही फल है ।वे इसी में खुश हैं,-

तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ ।

मो कहूँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ ।।(तुलसीदास 2015:448)

इस प्रकार की आदर्श भावना से एक सफल गृहस्थ जीवन का ही उदाहरण प्रस्तुत होता है ।

वन में रहते हुए भी राम अपना कर्तव्य निभाते हुए लक्ष्मण तथा सीता का ख्याल रखते हैं । वहीं लक्ष्मण भी राम-सीता का पूरा ध्यान रखते हैं-

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें । पलक बिलोचन गोलक जैसें ।।

सेवहिं लखनु सीय रघुवीरहि । जिमिअबिबेकी पुरुष सरीरहि ।।(तुलसीदास 2015:461)

5.3.6 शिष्टाचारों का नियमानुसार पालन

'रामचरितमानस' में समस्त संस्कारों, नियमों, आदर्शो का बड़ी हीसुंदरता से अनुपलन हुआ है । सभी पात्र अपने रीति-रिवाजों तथा शिष्टाचार आदि संस्कारों का तन्मयता के साथ पालन करते हैं । राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, सीता, ऋषिमुनि सभी अपने संस्कारों को लेकर चलते हैं । गृह में कोई अतिथि या ब्राह्मण आ जाने पर कैसे हमें उनकी सेवा करनी चाहिए,उन्हें किस प्रकार के वचन कहने चाहिए और अपनी संतानों को उनके समक्ष लेकर जाना तथा आशीर्वाद दिलाना चाहिए यह सीख हमें मिलता है । जब दशरथ ने मुनि

विश्वामित्र का आना सुना, तभी तुरंत ब्राह्मणों के समाज को लेकर मुनि का आदर किया और प्रमाण कर अपने आसन पर बैठाया। चरणों को धोकर पूजा कर के भोजन कराया तथा चारों पुत्रों को मुनि का आशीर्वाद लेने हेतु चरण स्पर्श कराये । ये संस्कारों का अनुपालन निश्चय ही प्रासंगिक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जब मुनि विश्वामित्र का आना सुन दशरथ स्वयं उनका स्वागत करते हैं-

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ।।

करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ।।

चरन पखारिकीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।।

बिबिध भाँति भोजन करवाया। मुनिबर हृदयं हरष अति पावा ।।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी।।(तुलसीदास 2015:205)

'रामचरितमानस' में एक और संस्कार सबसे विख्यात यह है कि वचन देकर उसका पालन करना चाहे फिर प्राण ही क्यों न चला जाए। यह प्रथा यह सिखाती है कि समाज में सत्यनिष्ठ बने रहना चाहिए। रघुकुल की रीतियाँ ही सबके आदर्श बन पड़े हैं। एक और रीति यह भी है कि रघुकुल में किसी परायी स्त्री के प्रति आँख उठा कर नहीं देखा जाता तथा किसी याचक को खाली हाथ नहीं लौटाते हैं। शत्रु की ललकार सुनकर कभी पीठ न दिलखाना भी रघुकुल की ही रीति है। राम इसी परंपरा का यहाँ पूर्णरूपेण निर्वाह करके यही शिक्षा देते हैं। राम स्वयं कहते हैं कि रघुवंशीयों में रण में शत्रु को पीठ दिखाने की प्रथा नहीं है। पराई स्त्री कभी इन्हें नहीं लुभा सकती तथा भिखारी कभी खाली हाथ नहीं लौटता-

जिन्ह कै लाहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥

मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ।।(तुलसीदास 2015:226)

अतः यह सभी संस्कार इनके पूर्वजों के संस्कार हीहैं जिसे रघुवंश में सभी पालन करते हैं । यह संस्कार निश्चय ही वंदनीय हैं तथा इन्हें प्रासंगिक ही कहा जाना चाहिए । इन संस्कारों का अनुपालन समाज के पथ प्रदर्शन में सहायक होगा ।

5.3.7 जातकर्म आदि सभी संस्कारों का पालन

भारतीय संस्कृति में गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है । 'रामचरितमानस' में भी सनातन भारतीय संस्कृति के उन सभी संस्कारों का यथा समय अनुपालन किया गया है। डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'रामचरितमानस' में संस्कार-विधान की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

> तुलसीदास संस्कारों के प्रति सचेष्ट हैं । वे उपवीत, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कारों की विशिष्ट प्रस्तुति करते हैं ।(पांडेय 2020:107)

आज के युग में अगर हम अपने आस-पास ही देखें तो सनातन धर्मावलंबी लोग ही आज इन कर्मों पर ध्याना नहीं देते । इन्हें ढोंग या दिखावा कह कर टाल देते हैं । परंतु यह कुछ ठग पंडितों या वेषधारियों के कारण ही ऐसा हुआ होगा । जो साधारण वर्ण के लोगों को भी इन महान संस्कृतियों के उलट-फेर के चुंगल में फंसा कर स्वयं उनका फायदा उठाते आएं हैं और यही कारण है की इनका पालन धीरे-धीरे समाप्त हो चुका है । परंतु यह संस्कार वैदिक रीति के अनुकूल तथा मानव जाति के हीत के लिए ही बनाए जाते हैं । उदाहरण स्वरूप सनातन संस्कृति में दाह संस्कार भी एक प्रकार का संस्कार ही है। अतः कोरोना जैसी महामारी के कारण आज लगभग सम्पूर्ण विश्व शव को दफनाने के बजाय जलाए जाने तथा स्वच्छता पालन करने पर सहमत हो गए तथा अब

इन कर्मों को अपनाने लगे हैं । अतः इस महान ग्रंथ 'रामचरितमानस' में उल्लेखित सोलह संस्कार ही अपनाए जाने योग्य हैं। आज इन सोलह संस्कारों के नाम तक शायद ही कोई जनता होगा । आज अनेकों एसे लोगों की दाह क्रिया कर्म आदि को मैंने देखा है जिसमें हिन्दू रीति-नीति होते हुए भी उनका पालन नहीं होता । शव को ले जाते समय राम नाम तक नहीं लिया जाता । ऐसे अनेकों उदाहरण आज यहीदर्शाते हैं कि इन संस्कारों का आंड़बर रहित पालन करना ही उचित है और 'रामचरितमानस'में वर्णित संस्कार हमें यही सीखातीहैं । अतः इस दृष्टि से भी यह बहुत प्रासंगिक है । इन सोलह संस्कारों के नाम क्रमशः- गर्भाधान,पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, विद्यारंभ, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार हैं ।

'संस्कार' शब्द से अभिप्राय है'शुद्धिकरण'। ये संस्कार निश्चय ही जीवन को भी शुद्ध करने मे सक्षम हैं । 'रामचरितमानस' में उल्लेखित कुछ संस्कारों का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है । जैसे- एक स्थान पर जब चारों कुमारों का राजा दशरथ ने नांदीमुख श्राद्ध कर के सब जातकर्मसंस्कार कर दिए तथा सोना, गौ, वस्त्र आदि सभी वस्तुएँ ब्राह्मणों को दान किए-

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।

हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रंन्ह कहँ दीन्ह ।।(तुलसीदास 2015:194)

जातकर्म संस्कार के पश्चात नामकरण संस्कार का भी यहाँ कार्यक्रम किया गया । यथा-

नामकरन कर अवसरु जानी । भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ।।(तुलसीदास 2015:196)

यहाँ चारों कुमारों- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का नामकरण संस्कार के पश्चात चूड़ाकर्म संस्कार भी किया गया है-

चूड़ाकरनकीन्ह गुरु जाई ।(तुलसीदास 2015:202)

फिर चूड़ाकरण के पश्चात यज्ञोपवीत संस्कार भी किया गया-

भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।।

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल बिद्या सब आई ।।(तुलसीदास 2015:203)

जिस प्रकार से पिता दशरथ ने पुत्रों के सारे संस्कारों का यथा समय पालन किया था । ठीक उसी प्रकार पुत्रों ने भी पिता दशरथ के अन्तयेष्टि संस्कार को विधि पूर्वक सम्पन्न किया ।

अतः कहा जा सकता है कि इनमें से कुछ संस्कारों का आज भी हमारे समाज में पालन हो रहा है तथा यह प्रासंगिक भी है।

5.3.8 अस्पृश्यता निवारण

वैसे तो मूल रामायण का रचनाकाल तथा राम का समय तो अनेकों हजारों वर्षों पूर्व का रहा है । तब वैदिक रीति अनुसार वर्णों के चार क्रम विभाजित थें । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । तब शूद्र होते हुए भी मनुष्यों मेंछुआ-छुत आदि की समस्याएँ नहीं थीं । सभी चारों वर्णों को शिक्षा का समान अधिकार था तथा एक साथ उठते-बैठते भी थे । परंतु महाभारत काल में आते-आते स्थिति बदलने लगी । यही वर्ण व्यवस्था अस्पृश्यता तक पहुँच गयी । छोटी जाति को शिक्षा का अधिकार ऊँची जाति की तरह नहीं रहा । इसका प्रबल प्रमाण कर्ण

के चरित्र से पता चलता है। यही अस्पृश्यतातथा जाति भेद मानसिकता बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गयी कि कलियुग के इस मध्यकाल में मिथ्याडंबर तथा शोषण का भयंकर रूप धरण कर चहूँदीशी विनाश करने लगी। राम के समय में मिथ्याडंबर नहीं था। रामकथा में राम तथा निषाद दोनों की मित्रता इस बात को प्रमाणित करती है। डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय के शब्दों में,-

> भरत को गंगा के तट पर निषाद ने अपनी जाति, नाम, ग्राम आदि बतलाकर जब दंडवत प्रणाम किया तब भरत ने उसे राम सखा समझ कर गले लगा लिया मानों उन्हें लक्ष्मण मिल गए हों।(पांडेय 2020:88)

डॉ. संजय कुमार शर्मा लिखते हैं-

> तुलसी ने मध्यकालीन समाज में जाति व्यवस्था के कारण होने वाले विघटन को रेखांकित किया है। उनका मानना था कि जाति-व्यवस्था से समाज टूटता है। तुलसी इसी 'टूटन' के खिलाफ लड़े हैं। जाति व्यवस्था में ऊंच-नीच की भावना के लिए अवकाश रहता है। वे भक्ति में सभी जातियों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के पक्षपाती थे।(शर्मा 2008:90)

मध्यकाल में इसी परिस्थिति के उद्धार हेतु कविराज गोस्वामी तुलसीदास ने राम और निषाद की गहरी मित्रता का उदाहरण दे कर यह दोष समाज से मिटाने का महान प्रयास किया है। राम किस प्रकार अपने मित्र से गले लगकर मिलते हैं इसका उदाहरण द्रष्टव्य है-

> प्रीति परम बिलोक रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई ।।(तुलसीदास 2015:902)

राम का मित्र जानकर मुनि वशिष्ठ ने अपने हृदय से लगाकर उसे अपने पास बैठा लिया-

रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा।।(तुलसीदास 2015:546)

निषाद ही नहीं अपितु शबरी तथा कोल-भीलों आदि असंख्य वनवासियों को भी प्रभु ने अपना प्रेम तथा सेवा करने का अवसर दिया । उस समय संसार भर में कहीं पर भी भेद-भाव की प्रवृत्ति नहीं थी । चारों वर्ण एक समान थें । एक उदाहरण और है, जहाँ राज-घाट पर सरयू नदी में चारों वर्ण एक साथ स्नान करते थे-

राजघाट सब बिधि सुंदर बर । मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ।।(तुलसीदास 2015:938)

इस प्रकार से यह प्रसंग सर्वथा प्रासंगिक तथा सराहनीय है।

5.3.9 मित्र धर्म का निर्वाह

'रामचरितमानस'में राम की सुग्रीव, विभीषण आदि से गहरी मित्रता इतनी पवित्र और आदर्शवादी है कि वह सराहनीय तथा प्रसंगानुकूल बन पड़ी है । जहाँ निषाद राज अपने मित्र राम के रक्षार्थ अपना सबकुछ यहाँ तक कि प्राण भी न्योछावर करने को तत्पर है वहीं सुग्रीव तथा विभिषन की मित्रता भी अतुलनीय है । निषाद जब भरत को सेना सहित वन में देखते हैं तब अज्ञान वश वह भरत को शत्रु समझ कर राम पर हमला करने की शाजिस के लिए सेना लेकर चलने वाला मान बैठते हैं । राम की रक्षा के लिए निषाद अपनी सेना लेकर अपने मित्र धर्म का निवहि करते हुए प्राणों का बलिदान देने को तत्पर हो जाते हैं-

स्वामि काज करिहऊँ रन रारी । जस धवलिहऊँ भुवन दस चारी।।

तजऊँ प्राण रघुनाथ निहारें । दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ।।(तुलसीदास 2015:501)

जब सुग्रीव और राम की मित्रता होती है तब सुग्रीव राम का काज करने का वचन देते हैं । सुग्रीव की मित्रता भी अतुलनीय है। सुग्रीव राम को चिन्तात्यागने के लिए कह कर यह विश्वास दिलाते हैं कि सीता की

खोज करने में वे राम की सब प्रकार से सहायता करेंगे । सुग्रीव की गहरी मित्रता देखते हुए ही राम ने पहले सुग्रीव की चिन्ता का हरण किया तथा बाली का वध कर सुग्रीव कोकिष्किंधा का राजा बना दिया-

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा ।।

सब प्रकार करिहऊँ सेवकाई । जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ।।(तुलसीदास 2015:686)

राम ने भी सुग्रीव का कष्ट हरण कर उसे मित्रता के धर्म की सीख दी । मित्रता के धर्म की व्याख्या करते हुए राम कहते हैं कि मित्रता का धर्म यही है कि अपने पहाड़ समान दुख को भी धूल के समान समझे तथा मित्र के धूल के समान दुख को भी पहाड़ के समान जाने ।राम कहते हैं कि जो मित्र के दुख से दुखी नहीं होता उस मनुष्य के दर्शन से पाप लगता है।

राम आगे मित्रता के गुणों कि व्याख्या करते हुए कहते हैंकि मित्र का धर्म मित्र को कुपथ से बचाकर अच्छे मार्ग पर चलाना हैतथा उसका अवगुण छिपाना है । लेन-देन में तथा विपत्ति में मित्र से सौ गुना स्नेह करे और जो पीठ-पीछे बुराई न करने वाला है वैसे मित्र ही अच्छे मित्र हैं तथा जो कपटी मित्र है वैसे मित्र का त्याग कर देना ही उचित है-

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटैअवगुनन्हिदुरावा ।।

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ।।

बिपतिकाल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।।

आगें कह मृदु बचन बनाई । पाछें अनहित मन कुटिलाई ।।

जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी ।।

सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तारें ।।(तुलसीदास 2015:688)

राम की मित्रता केवल शब्दों में ही नहीं बल्कि प्रकृत भी प्रमाणित है । जब विभीषण के ऊपर रावण ने अत्यंत भयानक शक्ति छोड़ दी तब मित्र को बचाने हेतु राम स्वयं उस शक्ति को झेल गए-

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ।।

तुरत बिभीषण पाछें मेला । सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ।।(तुलसीदास 2015:867)

राम ने जब विभीषण से मित्रता की थी तभी उन्होंने उसे लंका का राजा घोषित कर उनका राज्याभीषेक कर दिया था । अतः शरणागत की रक्षा करना भी उनका धर्म था । इस प्रकार हम देखते हैं कि मित्रता का प्रसंग 'रामचरितमानस' में जो वर्णित है वह निश्चय ही प्रासंगिक तथा ग्रहणीय है ।

5.3.10 भ्रातृ धर्म का पालन

भ्रातृ धर्म पालन हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की महान परम्परा का एक अन्यतम उदाहरण 'रामचरितमानस' में देखा जा सकता है । तुलसी की सर्वकालीन प्रासंगिकता की व्याख्या करते हुए डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय लिखते हैं-

राम पारिवारिक सामंजस्य के प्रतीक हैं । राम अपने सभी भाइयों पर समान प्रीति रखने वाले थे।(पांडेय 2020:159)

अपने प्राणप्रिय भाई भरत के लिए राम अत्यंत आनंद पूर्वक वन को चले जाते हैं । भ्रातृ धर्म का पालन करना कोई उनसे सीखे । राज्याभीषेक की बात सुनकर वे दुखी थे कि केवल उन्हीं का राज्यभीषेक क्यों ? सभी भाई एक साथ बड़े हुए हैं तो सबका बराबर हक है । भरत को राज्य देने की बात कितनी सहजता से राम ने स्वीकार कर ली । यह भ्रातृ धर्म अतुलनीय है-

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सन्मुख आजू ।(तुलसीदास 2015:378)

राम को वन जाते देख लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता का साथ कैसे छोड़ देते ? वे भी वन जाने की हठकर राम के पैर पड जाते हैं । राम ने कितनी सहजता से भरत को राज्य दे दिया । लक्ष्मण ने भी बड़े भाई का अनुगमन किया । भरत ने जब राम को वन में गया देखा, तब वह भी अपने भाग्य को कोसने लगें। अपने को दोषी ठहराने लगें । उनका मन तो केवल बड़े भ्राता की सेवा में ही है । राज्य सुख तो उन्हें तुच्छ लगने लगा ।

भरत ने वन जाकर भ्राता राम को वापस महल लौटा लाना चाहा । परंतु वचनबद्ध राम ने पादुका देकर भरत को शान्त किया । भरत ने भी भ्राता राम की चरणपादुकाओं को सिहांसान पर विराजीत कर स्वयं भी मुनियों का वेश बनाकर चौदह वर्ष के व्रत का पालन किया-

जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ।।

असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ।।(तुलसीदास 2015:614)

अतः भ्रातृ धर्म की ऐसी महान अभिव्यंजना शायद ही देखने को मिलती है । यह धर्म स्वतः ही सराहनीय है तथा प्रासंगिक भी है।

5.3.11 जीवनोपयोगी नीतियाँ तथा उनकी प्रासंगिकता

जिसे हम 'सुसंस्कृत' या 'आदर्श' समाज कहते हैं अथवा सभ्य समाज की आख्या देते हैं तथा उस समाज का और उस समाज में रहने वालेलोगों की गुणावली गाते नहीं थकते वही समाज अनेक नीतियों तथा शिक्षाओं, रीतियों,परम्पराओं, आचार-व्यवहारों आदि का अक्षय-स्त्रोत होता है । यही नीतियाँ अथवा शिक्षाएँ किसी भी समाज को सुशासित करती हैं। डॉ. स्टेल्लाम्मा सेव्यर लिखती हैं-

> रामचरितमानस में चित्रित समाज के पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सब प्रकार की समस्याएँ तुलसी के काल का न रहकर सभी कालों की हैं । ये संदर्भ भिन्न रूपों में आज भी हमारे सामने हैं। अतः मानस में चित्रित इन सामाजिक संदर्भों की प्रासंगिकता निस्तर्क है ।(सेव्यर 2014:58)

'रामचरितमानस'में इन नीतियों तथा शिक्षाओं की भरमार है । ये नीतियाँ तथा शिक्षाएँ सर्वथा ग्राह्य हैं तथा यह हर युग के लिए प्रासंगिक हैं । इन नीतियों के कुछ उदाहरण यहाँ देखने को मिलते हैं । जैसे- बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही कविराज गोस्वामी तुलसीदास ने कीर्ति,कविता और संपत्ति को तभी उत्तम बताया है जब वह गंगा की तरह सबका हित करे। मानव कितनी ही संपत्ति क्यों न अजिर्त कर ले, कितनी ही सुंदर कविता क्यों न रच ले तथा उसकी कीर्ति कितनीही आकाश में क्यों नगूँजे, परंतु यदि वह उनसे अपने समाज और मानव का कल्याण न कर पाए तो वह व्यर्थ ही है। तुलसीदास के शब्दों में-

> कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।(तुलसीदास 2015:35)

बालकाण्ड में सती अपने पिता प्रजापति दक्ष के द्वारा किए गए अपने पति शिव का अपमान सहन नहीं कर पायीं और अपने देह का ही धर्म-वश त्याग कर दिया । यहाँ यही शिक्षा दिया गया है कि पति, संत,शिव और

भगवान विष्णु की निंदा सुनना नहीं चाहिए। या तो वह उस निंदा करने वाले की जीभ काट ले या फिर अपना कान मूँदकर उस स्थान का ही त्याग कर दें-

संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा।

काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवण मूदि न त चलिअ पराई।।(तुलसीदास 2015:83)

यहीं आगे एक और नीति की बात कही गयी है कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के गृह कभी बिना बुलाये भी जाना चाहिए। परंतु अगर कहीं विरोध मन में हो, तब तो वहाँ जाना कल्याणप्रद नहीं होता यहाँशिव द्वारा समझाए जाने पर भी सती अपने पिता के गृह चली जाती हैं। परिणाम में उनका देह त्याग तथा यज्ञ विध्वंश तक को ही प्राप्त हो जाता है-

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहूँ न संदेहा।।

तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥(तुलसीदास 2015:82)

आगे पुनः एक सीख देते हुए कविराज गोस्वामी तुलसीदास लिखते है कि, माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना विचारे ही शुभ मान कर स्वीकार करना चाहिए क्योंकि वे लोग स्वप्न में भी हमारा हमेशा ही भला चाहते हैं-

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।।(तुलसीदास 2015:93)

इसी के आगे एक स्थान पर वेद धर्म की शिक्षा को भी महत्व दिया गया है। तुलसीदास ने कथा आरंभ करने से पूर्व ही यह कहा था कि वेद-पुराण, विभिन्न शास्त्रों आदि को पढ़कर ही उन्होंने राम कथा लिखनी प्रारंभ

की है । अतः उनकी राम कथा में से वेद-शास्त्रगत शिक्षाओं का होना तो आवश्यक ही था । वेद की परंपरा की एक शिक्षा मेंपरोपकार को ही परम धर्म कहा गया है-

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति कह परम धरम उपकारा ।।

पर हित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंसहि तेही ।।(तुलसीदास 2015:98)

बालकाण्ड में ही एक स्थान पर कहा गया है कि प्रतिष्ठा अग्नि तुल्य होती है जो तप रूपी वन को भस्म कर देती है । अतः मनुष्य को चाहिए की वह प्रतिष्ठा लोभ का त्याग करे और केवल परोपकार तथा तपस्या करें-

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ।।(तुलसीदास 2015:166)

तुलसीदास आगे एक स्थान पर लोभ का मूल लाभ को ही बताते हुए कहते हैं कि प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता ही जाता है-

जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥(तुलसीदास 2015:180)

बालकाण्ड में ही धनुष भंग प्रसंग आता है। राम के सुकुमार शरीर को देख रानी विचलित हो जाती हैं कि कैसे ये कोमल कुमार शिव धनुष को तोड़ पाएगा । अतः तभी एक सखी ने एक सीख दी कि कभी किसी तेजवान को साधारण या छोटा नहीं समझना चाहिए । जैसे घड़े से उत्पन्न होने वाले ऋषि अगस्त्य ने भी एक बार समुद्र को सोख लिया था । अतः कभी किसी सामर्थ्यवान को छोटा कहकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए-

बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिअन रानी ।।

कहँकुंभज कहँ सिंधु अपारा सोषेउ सुजसु सकल संसारा ।।(तुलसीदास 2015:248)

अयोध्याकाण्ड में कैकयी की कुसंगति के कारण हुए दुर्गति की व्याख्या करते हुए कवि क़हते है कि कुसंगीत के कारण प्रभाव इतना बुरा होता है कि उसके प्रभाव में सभी नष्ट हो जाते हैं। नीच मनुष्यों की मतिको अगर सुना जाए तो चतुरव्यक्ति की भी चतुराई विनष्ट हो जाती है।

आज के समाज में बच्चे बड़े होने के पश्चात माता-पिता की सेवा नहीं करते। ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे आस-पास मौजूद है। राम का स्वभाव,उनका माता-पिता से स्नेह, यह इतना अनुसरणीय है कि उसकी आभा समस्त संसार को प्रकाश देती है। सबके हृदय में यही सेवा भावना को जाग्रत करती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी।।

तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।(तुलसीदास 2015:378)

अतः माता-पिता की सेवा भावना जो यहाँ व्यक्त है वह निश्चय ही प्रासंगिक तथा अनुसरणीय है।

शास्त्रों में कही गयी एक बात अति प्रचलित है कि सभी अपने-अपने कर्म के अनुसार फल पाते हैं। जो जैसा करेगा उसे उसी के कर्मानुसार फल भी प्राप्त होता है। अतः इस बात से अच्छा कर्म करने की वृति पर बल दिया गया है। जब राजा दशरथ के हाथों निर्दोष श्रवण कुमार के प्राण चले गए, तभी उस कर्म के फल के अनुसार उन्हें भी पुत्र का वियोग सहते हुए मृत्यु का भागी बनना पड़ा। लक्ष्मण यही बात यहाँ बताते हुए कहते हैं कि-

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।(तुलसीदास 2015:419)

वेद-पुराणों में सत्य की महिमा गायी गयी है । वेद-पुराण आदि का मत है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। अतः सत्य के मार्ग पर चलने की कथा सर्वथा सभी युग में प्रासंगिक है-

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।(तुलसीदास 2015:422)

किसी भी कार्य को करने से पूर्व अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिए । क्योंकि जो मूर्ख होते हैं वही बिना सोचे समझे कर्म कर के पछताते हैं । जब निषाद अनजाने और बिना सोचे-समझे भरत पर आक्रमण करने की सोच लेते हैं, तभी एक वृद्धउन्हेंएक सीख सुनाकर रोक लेते हैं-

भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें । बड़ी हित हानि जानि बिनु जूझें ।।(तुलसीदास 2015:502)

आज के समाज में अगर देखा जाए तो प्रायः व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार के ऋण या फिर अहित चाहने वाले शत्रु की चपेट में है । अगर वेद-शास्त्रों की मानें तो उनमें बहुत पहले ही कहा जा चुका है कि शत्रु और ऋण को कभी रखना नहीं चाहिए । उन्हे समाप्त कर देना ही उचित हैं । नहीं तो ऋण हो या शत्रु हमें समाप्त कर देगा। यही सीख यहाँ अयोध्याकाण्ड में है-

रिपु रिन रंच न राखब काऊ ।।(तुलसीदास 2015:534)

वर्णाश्रम धर्म में गृहस्थों या शाशकों कोमुख या राजा जो गृह में या राज्य में प्रधान होता है उसे मुख के समान कहा गया है । जिस प्रकार मुख स्वयं तो अन्न ग्रहण करता है परंतु मुख द्वार से गया हुआ वही अन्न सम्पूर्ण शरीर का पोषण करता है। ठीक उसी प्रकार घर के मुखिया या राजा का भी कर्तव्य है कि सबका उचित प्रकार से भरण पोषण करे । 'रामचरितमानस' हमें यही नीति सिखाती है-

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहूँ एक ।

पलाइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।।(तुलसीदास 2015:608)

जब मनुष्य विपत्ति में पड़ता है तभी उसे आपनों के सहारे की जरूरत पड़ती है । धैर्य, धर्म,मित्र और नारी विपत्ति में ये चार ही मनुष्य के काम आते हैं । जब विपत्तिआति है तब इनकी परीक्षा हो जाती है कि कौन सच्चा मित्र है और झूठा-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ।।(तुलसीदास 2015:625)

यही सब सीख हमें जीवन में अपने-परायों का फर्क समझने में सहायता प्रदान करती है । ये प्रसंग सर्वथा ही प्रासंगिक है ।

'अरण्यकाण्ड' में जब रावण मारीच से विनम्रता पूर्वक सहायता हेतु आग्रह करता है तब मारीच के मन में विचार आता है कि यह नीचप्रकृति का व्यक्ति है। इसकी नम्रता का स्वभाव परिवर्तन इसकी कुटिलता काही प्रमाण देती है। तभी मारीच के वचन से यही सीख मिलता है कि नीच के झुकने में विश्वास नहीं कारना चाहिए । परिणामतः रावण का झुकाव मारीच की मृत्यु का कारण ही बना-

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ।

भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ।।(तुलसीदास 2015:652)

मारीच यहाँ तक कि यह सीख भी देता है कि शस्त्रधारी, भेद जाननेवाला, समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैध, भाट, कवि तथा भोजन बनाने वाला कारीगर- इन नौ प्रकार के व्यक्तियों से अगर बैर किया जाय तो अनिष्ट ही होता है-

तब मारीच हृदयं अनुमाना । नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ।

सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी ।।(तुलसीदास 2015:654)

रावण जैसे ही सीता हारण के पाप के कुपथ पर चलने लगता है तभी से उसका बुरा समय शुरू हो जाता है। यहाँ भी यही शिक्षा दिया गया है कि कुमार्ग पर पैर पड़ते ही शरीर का तेज, बुद्धि एवं बल का नाश शुरू हो जाता है-

इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ।।(तुलसीदास 2015:657)

'अरण्यकाण्ड' में ही सीता हरण के पश्चात राम अपना दुख प्रकट करते समय लक्ष्मण से ज्ञान की बात करते हुए कहते हैं कि काम,क्रोध और लोभ ये जीवों के भीतर सब से प्रबल दुष्ट हैं । ये ऋषि मुनियों तक को भी नष्ट कर देते हैं-

तात तीति अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।

मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महूँ छोभ।।(तुलसीदास 2015:671)

कवि एक स्थान पर कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मद और माया का प्रभाव केवल राम की कृपा से ही छुट जाता है-

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया ।।(तुलसीदास 2015:671)

जब बालि का वध हो जाता है तब बालि प्रभु से यही एक बात पूछतेहैं कि वह राम का शत्रु और सुग्रीव राम का मित्र कैसे हो गए? तभी धर्म को धरण करने वाले प्रभु श्री राम बालि को शिक्षा देते हैं कि छोटे भाई की स्त्री, बहन,पुत्र की स्त्री और कन्या ये चारों एक समान हैं । अतः जो कोई भी इन्हें बुरी दृष्टि से देखेगा वह पापी

है। उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं लगेगा । अतः बालि ने भी सुग्रीव की पत्नी को बल पूर्वक भोग किया है। इसीलिए वह पापी हुआ-

अनुज बधू भगिनी सूत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ।।(तुलसीदास 2015:691)

'किष्किंधाकाण्ड' में कुपुत्र की करनी पर एक सीख दी गयी है । जैसे कुपुत्र के जन्म लेने से कुल के उत्तम धर्म आदि नष्ट हो जाते हैं । कुल का नाश हो जाता है-

जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ।।(तुलसीदास 2015:697)

'सुन्दरकाण्ड' में एक स्थान पर हितैशियों के ठकुरसुहाती कीबात कही गयी है कि मंत्री,वैध और गुरु यदि किसी लोभवष बातें करने लगें तो राज्य, शरीर और क्रमश: धर्म इन तीनों का शीघ्र ही विनाश हो जाता है-

सचिव बैद गुर तीनिजौं प्रिय बोलहिं भय आस ।

राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगहीं नास ।।(तुलसीदास 2015:748)

आगे रावण की स्थिति को इंगित करते हुए कवि एक और सीख देते हैं कि अपना कल्याण, यश, सुबुद्धि, शुभ गति और अनेकों सुख की चाहत रखने वाले को पराई स्त्री के मोह को त्याग देना ही उचित है-

जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।

सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।।(तुलसीदास 2015:749)

भारतीय संस्कृति में शरणागत की रक्षा करने की महान प्रथा है। राम यहाँ स्वयं कहते हैं कि जो भी मनुष्य शरण में आए हुए की रक्षा केवल अपने अहित की बात सोचकर नहीं करता या उसे त्याग देता है, वह पापी है तथा उसे देखने में भी पाप लगता है-

सरनागत कहूँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पावंर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ।।(तुलसीदास 2015:754)

समुद्र पर सेतु बंधन हेतु सहायता की याचना करने पर जब समुद्र कोई उत्तर नहीं देता । तभी राम कुपित हो उठते हैं तथा कहते हैं कि बिना भय के प्रीति नहीं होती-

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति ।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ।।(तुलसीदास 2015:766)

गोस्वामी तुलसीदास इसी प्रसंग में एक प्रासंगिक सीख कहते हैं कि ममता में फँसे हुए मनुष्य को ज्ञान की कथा, लोभी से वैराग्य की कथा, क्रोधी से शांति की बात और कामी से भगवान की कथा कहना व्यर्थ है । क्योंकि इनका कोई फल नहीं होता । जैसे ऊसर में बीज बोने से व्यर्थ ही हो जाता है-

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी।।

क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।(तुलसीदास 2015:766)

पत्नी का कर्तव्य होता है कि अपने पति को उचित राह पर चलने की प्रेरणा दे । उसकी गलतियों को भी बताए । रावण द्वारासीता के हरण के पश्चात मंदोदरी को ज्ञान हो चुका था कि अब रावण की मृत्यु की तिथि निश्चित हो गयी है । अतः वह अपने पति को समझाने का प्रयास करती हुई कहती हैंकि शत्रुता उसी के साथ

करनी चाहिए जिसे बुद्धि और बल के द्वारा जीता जा सके। अन्यथा विनाष निश्चित है ।मंदोदरी अपने स्वामी से कहती है कि उनमें और श्रीराम में जुगनू और सूर्य का अन्तर है । वे चाहकर भी श्रीराम से नहीं जीत सकेंगे-

नाथ बथरू कीजे ताही सों । बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ।।

तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा । खलु खद्योत दिनकरहि जैसा।।(तुलसीदास 2015:777)

'लंकाकाण्ड' में युवराज अंगद को रावण के दरबार में दूत बना कर भेजा गया था । रावण जैसे कपटी को यूवराज अंगद नीति की शिक्षा देते हुए कहते हैं किवाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यंत मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्य का रोगी, निरंतर क्रोधयुक्त, भगवान बिष्णु से विमुख, वेद और संतो का विरोधी, अपने शरीर का पोषण करने वाला,परायी निन्दा करने वाला और पाप की खान- ये चौदह प्राणी जीते जीमुर्दे के समान हैं । यह सभी बातें निश्चय ही प्रासंगिक हैं-

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।

सदा रोगबस संतत क्रोधी । बिष्णु बिमुख श्रुती संत बिरोधी ।।

तनु पोषक निंदक अघ खानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ।।(तुलसीदास 2015:801)

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि दूसरों को लोग बहुत प्रकार से उपदेस देते रहते हैं । परंतु स्वयं वैसा आचरण नहीं करते । अतः यहाँ यह भी शिक्षा मिलती है कि दूसरों को उपदेस देने से पहले स्वयं के आचरण पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।(तुलसीदास 2015:848)

'लंकाकाण्ड' में जब विभिषण ने रथ पर आरूढ़ रावण के साथ बिना रथ के राम का संग्राम देखा तब वे दुखी हो गए । विभीषण के मन को इस प्रकार से दुखी देख राम ने जो ज्ञान दिया वह अत्यंत ही सराहनीय है। राम यहाँ पर विभिषण को शिक्षा देते हैं कि शौर्य और धैर्य जिस रथ के पहिए हों, सत्य और सदाचार जिसकी मजबूत ध्वजा हो, बल-विवेक, दम और परोपकार रूपी चार उसके रथ के घोड़े हों,क्षमा, दया और समतारुपी रस्सी से जुड़ा हो, ईश्वर का भजन ही उसका सारथी हो, वैराग्य ढाल तथा संतोष ही तलवार हो, दान फरसा तथा दुद्धि प्रचण्ड शक्ति हो, विज्ञान उसका धनुष हो, निर्मल और अचल मन तरकस के समान हो,शम,यम और नियम ही उसके बाण हों, गुरु-ब्राह्मण की सेवा ही कवच हो, उसके समान योद्धा दूसरा नहीं हैं। अतः ऐसे योद्धा को जीतने का सामर्थ्य किसी शत्रु में नहीं । ये ज्ञान स्वतः ही प्रासंगिक एंव विचारणीय भी है। आज के समाज में मनुष्यों में इन सभी गुणों का अभाव है । इसी कारण ऐसे साहित्य तथा इन महान गुणों के श्रवण-पठन की आवश्यकता प्रत्येक काल में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुसरणीय है-

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ।।

ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोंदडा ।।

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहूँ रिपु ताकें ।।(तुलसीदास 2015:851)

जो परद्रोह में रत होता है तथा अधर्म की राह पकड़ लेता है, वैसे मनुष्यों के सारे प्रयास सदा निष्फल हो जाते हैं,जैसे रावण का हुआ-

बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥(तुलसीदास 2015:865)

प्रायः देखा जाता है कि लोग तीर्थ यात्रा पुण्य करने जाते हैं। परंतु उल्टा अशुद्ध आचरण तथा बुरे स्वभाव एंव अपवित्र मन के वश में होकर तीर्थ में भी पुण्य नष्ट कर उल्टा पाप कमा के आ जाते हैं। कवि ने इसका भी एक सुंदर उदाहरण दिया है-

काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ।।(तुलसीदास 2015:872)

5.4 रामभक्ति की प्रासंगिकता

भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए डॉ. नरेश मिश्र तुलसी की लोकमंगलकारी भावना की आलोचना करते हुए कहते हैं-

तुलसीदास की रामकथा समस्त लोक जीवन का प्रतिनिधित्व करती है।(मिश्र, संपा 2019:191)

इस शोध प्रबंध के तृतीय अध्याय में वैसे तो रामभक्ति की विस्तृत व्याख्या की जा चुकी है, परंतु रामभक्ति की प्रासंगिकता या आवश्यकता पर विचार इस अध्याय में आवश्यक है। अगर गहन अध्ययन तथा विचार कर के देखें तो रामभक्ति के बिना इस संसार में मनुष्य जाति की स्थिति दयनीय है। राम ही इस जगत के आधार हैं। राम के बिना जगत की कल्पना भी कोरी प्रतीत होती है।'सुंदरकाण्ड' में एक स्थान पर रावण के

महल में हनुमान अपने आराध्य श्रीराम के गुणों की व्याख्या करते हुए कहते हैंकि राम के नाम से विहिन वाणी शोभा हीन है ।जिस प्रकार आभूषणों से सुसज्जित स्त्री वस्त्र विहिन शोभाहीन हो जाती है। ठीक उसी प्रकार राम से विमुख हुए पुरुष की भी सारी शोभा या प्रभूता विनष्ट हो जाती है। अतः जिन नदियों के मूल में कोई जलस्त्रोत न हो अथवा जिन के हृदय में राम नाम का सहारा न हो, उनका सूख जाना या विनष्ट हो जाना निश्चय है-

राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।

बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषन भूषित बर नारी ।।

राम बीमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ।।

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ।।(तुलसीदास 2015:735)

तृतीय अध्याय में ही मैंने चार युग तथा उन युगों के विशेष गुणों का भी उल्लेख कर दिया है। तुलसीदास ने मानस में कहा है कि प्रथम युग 'सत्य युग' में ध्यान,'त्रेता युग' में यज्ञ से, तृतीय युग 'द्वापर' में पूजन तथा 'कलियुग' में नाम जप से ही जीवों का उद्धार संभव है। इसी प्रकार तुलसीदास यह घोषित कर कहते हैं किइस घोर कलियुग में 'राम' नाम ही एक मात्र उद्धार का सहारा है । कलियुग में कर्म, भक्ति ज्ञान कुछ नहीं हैं । कवि कहते हैं कि केवल 'राम' नाम ही एक मात्र आधार है । इस कपटी कलियुग में 'रामनाम' ही वह बुद्धिमान हनुमान है, जिसने लंका विजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । अथार्त इस कलियुग में राम नाम हनुमान की तरह सहारा बनेगें-

नहिं कलि करम न भगति बिबेकु । राम नाम अवलंबन एकू ।।

कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ।।(तुलसीदास 2015:49)

इस 'राम' नाम को महामंत्र कहते हुए तुलसीदास लिखते हैं कि स्वयं शिवजी भी राम नाम के बल से ही काशी में मुक्ति देने में समर्थ हैं । नाम की महिमा के कारण ही गणेश भी प्रथम पूज्य हैं-

माहामंत्र जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।।

महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ।।(तुलसीदास 2015:41)

कविराज तुलसीदास कथा के प्रांरभ में ही आगे लिखते हैं कि वेद-पुराणों ने भी समस्त जगत का सार तथा वेद-पुराणों का सार इस 'नाम' को ही बताया है-

एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ।।

मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ।।(तुलसीदास 2015:30)

महाकवि तुलसीदास स्वयं के मन को समझाते हुए समाज को यही प्रेरणा देते हैं कि अपने बाहर और भीतर दोनों ओर उजाला लाने के लिए मुखरूपी दवारा की जीभ रूपी देहली पर इस पवित्र राम नामी मणि दीपक को सजाकर रख दें-

राम नाम मनदीप धरू जीह देहरीं द्वार ।

तुलसी भीतर बाहेरहूँ जौं चाहसि उजिआर ।।(तुलसीदास 2015:43)

भगवान की प्रतिज्ञा है कि प्रत्येक युग में अवतरित होकर अधर्म के विनाश और धर्म की रक्षा हेतु तथा अपने भक्तों का उद्धार करने इस धरा पर अवश्य आएँगें । कभी मत्स्य अवतार कभी वराह या नृसिंह अवतार, तो कभी राम या स्वयं कृष्ण रूप में आएंगें । वे ही इस समस्त ब्रह्माण्ड कें उन सभी जीवों के पिता तथा उनमें

निहित ज्ञान और वैराग्य हैं। अर्जुन को ज्ञान देते हुए द्वापर युग में भगवान स्वयं इस बात को गीता में कहते हैं वे ही इस ब्रह्माण्ड के पिता, माता, आश्रय तथा पितामह हैं। वे ही ज्ञेय(जानने योग्य), शुद्धिकर्ता तथा ओंकार हैं। वे ही त्रिग्वेद, सामवेद तथा यजुवेर्द भी हैं-

पितामहस्य जगतों माता धाता पितामहः।

वेद्यम् पवित्रम ऊँकार ऋक्साम यजुरेव च ।।(प्रभुपाद 2011:313)

अतः श्री भगवान की भक्ति ही मूल धर्म है। कर्मों में सबसे बड़ा कर्म है तथा ज्ञान में परम ज्ञान है। भक्ति की महिमा इतनी भारी बतायी गयी है कि इसके किए बिना कोई भी मनुष्य इस जीवन-मरण रूपी संसार से पार नहीं जा सकता। केवट एक साधारण सा मल्लाह है। परंतु उसके हृदय में भक्ति का महान उद्वेग देख उसकी दैन्यता और प्रेम का ध्यान कर प्रभु श्री राम स्वयं उसे अपनी अहैतुकी कृपा देने पहुँच जातेहैं। केवट जानता है कि जो इस संसार रूपी भवसागर से पार उतारने वालेहैं उसे मैं क्या एक साधारण सी नदी पार कराऊंगा। उसने तो अहैतुकिकृपा कर के मुझे उबारा है। तुलसीदास इस अद्भुत प्रसंग को कुछ इन शब्दों में लिखते हैं कि जिस भगवान ने तीन पग में ही सम्पूर्ण जगत को नाप कर अत्यंत छोटा कर दिया था, उन भगवान ने केवट से एक छोटी सी नदी पार उतारने का आग्रह किया है। वास्तविकता तो यही है कि भगवान ने स्वयं उस पर यह महान कृपा की है-

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ।।

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा ।।(तुलसीदास 2015:427)

जब केवट भगवान को गंगा नदी के पार उतार चुका तभी भगवान ने उसे सीता द्वारा भेंट की गयी अँगूठी देनी चाही। परंतु केवट की आँखों में प्रेम के अश्रु हैं। वह यह अँगूठी स्वीकार नहीं करता। वह तो केवल भगवान से यही कहता है कि आज उसने सबकुछ पा लिया। वास्तविकता तो यही है कि जन्म–जन्मांतर से भटक रहे जीव केवट का आज उद्धार किया है। केवट के ऊपर यह कृपा इस बात की ही पुष्टि करता है कि यदि कोई भक्ति करता है तो वह वेदाध्ययन, तपस्या, दान, दार्शनिक तथा समस्त सकाम कार्यों के बिना भी उद्धार प्राप्त कर लेता है। गीता में स्वयं भगवान इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं-

वेदेषु यज्ञेषु तप: सु चैव

दानेषुयत्पुण्यफलं प्रदिष्टम।

अत्येति तत्सर्वमिंद विदित्वा

योगी परं स्थानमुपैति चद्यम् ।।(प्रभुपाद 2011:290)

भगवद्गीता मेंभगवान यही बात कहते हैं कि जीवन के अंत में भी यदि कोई भगवान का स्मरण करते हुए शरीर का त्याग कर देता है, तभी वह उसी समय भगवान को प्राप्त होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है-

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय: ।।(प्रभुपाद 2011:275)

डॉ. संजय कुमार शर्मा भक्तिकाव्य की व्याख्या करते हुए उसकी प्रासंगिकता के विषय में कहते हैं-

> 'रामायण','महाभारत','रामचरितमानस' आदि में तो 'दिव्यता' और 'अलौकिकता' है, ये ग्रंथ आज भी सार्थक और 'प्रासंगिक' हैं ।...अतः ऐसा साहित्य प्रत्येक काल में 'प्रासंगिक' रहेगा, उसकी 'अर्थवत्ता''महत्ता' और 'सार्थकता' कभी खंडित नहीं हो सकती ।(शर्मा 2008:65)

अतः यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता अति महत्वपूर्ण है तथा युग के लिए यह अमृत वर्षा सदृश है जो आने वाले काल में उसे जीवन और पोषण देता रहेगा । इस महाकाव्य में निहित मूल्य, आदर्श, नीति, नियम, भक्ति आदि युगों तक समाज का कल्याण करती रहेंगी । डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय के शब्दों में-

> इस प्रकार सामाजिक एकता के परिप्रेक्ष्य में तुलसी आज भी प्रासंगिक हैं । उनका संदेश आने वाली पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा ।(पांडेय 2020:90)

5.5 निष्कर्ष

इस प्रकार से सम्पूर्ण वेद-शास्त्र तथा पुराणों का सार 'रामचरितमानस'की बात तथा इन सभी महान आचार्यों, ऋषि-मुनियों की भक्ति पर विचार करें तो यह स्वतः ही सिद्ध होता है कि रामभक्ति ही समस्त संसार के उद्धार का साधारण उपाय है । रामभक्ति ही वह अमृत है जो मानव जाति का उद्धार कर उसे भक्ति रूपी जीवन देती हैं । राम नाम ही कल्पतरु के समान इस कलियुग रूपी नगरी में रक्षण और पोषण करता है और हमारा जीवन सफलबनाता है। राम भक्ति आज के इस कलह पूर्ण अशांत समाज में शांति और धैर्य का संबल बन सबका कल्याण करती है । अतः निश्चय ही राम भक्ति इस कलिकाल में सदा से प्रासंगिक है। इसके साथ ही

'रामचरितमानस' में आये जीतने भी पात्र हैं वे सभी अपने-अपने आदर्शों तथा कर्तव्य पालन की दृष्टि से महान हैं । उनका जीवन जिस प्रकार धन्य है तथा समाज में एक महान उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ठीक उसी प्रकार उनके जीवन का आदर्श, उनकी सेवापरायणता, प्रत्येक रीति-नीतियाँ, शिक्षाएँ तथा आचार-व्यवहार एवं जीवन को सही रूप से चलाने के जो मानदंड हैं, सभी प्रासंगिक भी हैं और अनुसरणीय होने के कारण समाज का पथ प्रदर्शन भी करती हैं और सदा पथ प्रदर्शन करती भी रहेंगी ।